अन्तराष्ट्रिय मैथिली सम्मेलन मुम्बईद्वारा 'मिथिलारत्न' सम्मान, मधुरिमा नेपालद्वारा 'मधुरिमा सम्मान' आदि दर्जनो सम्मान, पुरस्कार प्राप्त ।

विशेष : हिन्दी, मैथिली, नेपाली में निरन्तर लिखते एवं छपते रहते हैं । मैथिली में एक दर्जन व नेपाली व हिन्दी में मौलिक एवं सम्पादित उतने ही पुस्तकों के रचयिता 'भ्रमर' विगत चालिस वर्षों से पत्रकारिता में भी संलग्न हैं । प्रज्ञा-प्रतिष्ठान से मायादेवी प्रज्ञा पुरस्कार (२०५२) के साथ नेपाल भारत के विभिन्न संस्थाओंद्वारा दर्जन भर पुरस्कार, सम्मान से नवाजे जा चुकें 'भ्रमर' की कइ हिन्दी कहांनियां संग्रहों में संग्रहित हो चुके हैं । 'हिन्दुस्तान', 'आज', 'सहारा टाइम्स', 'दिनमान' 'पाटलीपुत्र टाइम्स' आदि भारतीय क्षेत्र के एवं 'इन्कलाब', 'हिमालिनी' आदि नेपाल की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में स्तम्भ लेखन से लेकर दर्जनों समसामयिक आलेख प्रकाशित हो चुके हैं, होते रहते हैं । अपनी मातृभाषा मैथिली में लेखन की प्राथमिकता रखते हुये भी हिन्दी व नेपाली लेखन में निरन्तरता बनाए रखते हैं ।

सम्पर्क : १।५५५, सरस्वती सदन, जनकपुर,
फो. नं. ०४१-५२०२६७, ९८५४०२०८८९
हाल : मैतीदेवी, काठमाडौं,
फो. नं. ०१-४४४४९६८, मो. ९८४११६४७७०
e-mail: rbkapari@hotmail.com



अनुवादक गोपाल अश्क (जन्म : वि.स.२०१८, भेडिहारी, जि. पर्सा) भोजपुरी साहित्य के जाने माने हस्ताक्षर हैं । लगभग डेढ दर्जन पुस्तकों के रचयिता श्री 'अश्क' हिन्दी में भी निरन्तर लिखते रहते हैं । 'पर्वतों की ओंट में' व 'आग का मौसम' इनकी हिन्दी गजल की पुस्तकें है । 'बस, अब नहीं' को हिन्दी में लाकर इन्होंने बडा ही महत्त्वपूर्ण काम किया है ।



रामभरोस कापड़ि 'भ्रमर'

बस, अब नहीं

(दीर्ध कविता)

'८० के दशक में जब मैथिली में यह कविता 'नहि, आब नहि' के नाम से प्रकाशित हुयी तो मैथिली के समालोचको ने इसे प्रथम प्रेम-काव्य कह भूरि-भूरि प्रशंसा किया था । प्रसिद्धि प्राप्त तत्कालीन मैथिली साप्ताहिक पत्रिका "मिथिला मिहिर" में सर्वाधिक समीक्षकों की टिप्पणी प्राप्त इस दीर्घ कविता के सम्वन्ध में सशक्त समालोचक रामानुग्रह झा ने लिखा था - 'प्रेम, जो स्त्री-पुरुष की आदिम प्रवृत्ति है, उसे आधार बनाकर मैथिली कविता में कदाचित पहली बार कुछ कहने का प्रयास इस दीर्घ कविता का मूल विषय है... ।' प्रसिद्ध कवि व समालोचक जीवकान्त ने कहा- 'मैथिली नव कविता के प्रेम शून्य वातावरण में पहली दफा ऐसा साहसपूर्ण प्रयास हुआ है... ।' प्रथम संस्करण की भूमिका में मैथिली, हिन्दी, नेपाली के वरेण्य समालोचक, कवि डा. राजेन्द्र विमल लिखते हैं- 'रामभरोस कापड़ि 'भ्रमर' के वाणी विच्छिति का मैं प्रशंसा करता हूँ, मुक्त कंठ से । भावना की प्रत्येक लघु सूक्ष्म लहर को लालित्यपूर्ण शव्द में बांध लेना भाषा पर इनका सशक्त अधिकार का प्रमाण है । प्रत्येक पंक्ति सुबह में बहती पुरूवैया जैसे मेरे हृदय में लहर उत्पन्न करती सिहरन पैदा करती चली गयी हो ! ....मैं अभी तक गुलाबी कंपकंपी का अनुभव कर रहा हूँ !!" ६० के दशक के बाद नेपाल के स्थापित कवियों के गुरु हिन्दी, मैथिली के चर्चित साहित्यकार डा. धीरेन्द्र ने पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर लिखा था- '...प्रस्तुत दीर्घ कविता वैयक्तिक वेदना से पूर्ण होने के साथ-साथ समाजिक आक्रोश का विमुग्धकारी संयोजन प्रतीत होती है जो मन को आँसुंओं से भर देता है और मस्तिष्क में भयंकर तूफान उठा देता है ।' तीन दशक पूर्व लिखी इस दीर्घ प्रेम कविता की प्रासंगिकता आज भी बरकरार है, और यह हिन्दी पाठकों के बीच भी अपना स्थान बना सकें, यह संस्करण प्रस्तुत किया गया है ।



जनकपुर ललितकला प्रतिष्ठान

रामभरोस कापड़ि 'भ्रमर'

बस, अब नहीं

(दीर्घ कविता)



रामभरोस कापड़ि 'भ्रमर'

जन्म : २००८ साल, श्रावण, बधचौडा, जि. धनुषा
शिक्षा : एम.ए.(त्रि.वि.वि.) पी.एच.डी. (मानद)
सम्प्रति : सदस्य:प्राज्ञ परिषद्,नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान, कमलादी

प्रकाशित कृति

काव्य : बन्न कोठरी औनाइत धुंवा (कवितासंग्रह): २०२९ साल, नहि, आब नहि (दीर्घकविता) २०३६ साल, मोमक पघलैत अधर (गीत, गजल), अप्पन अनचिन्हार (कवितासंग्रह) : १९९० ई., भयो अब भयो (अनुवाद) ।

कथासंग्रह : तोरासंगे जएबौ रे कुजवा (कथासङ्ग्रह) १९८४ ई., हुगली ऊपर बहैत गंगा (कथासङ्ग्रह) २०६५

नाटक : रानी चन्द्रवती : २०४५ साल, एकटा शआओर वसन्त : २०५२ साल, महिषासुर मुर्दावाद एवं अन्य नाटक : २०५४ साल, भ्रमरका उत्कृष्ट नाटकहरू (नेपाली अनुवाद) २०६४ ।

शोध : जनकपुरधाम र यस क्षेत्रका सांस्कृतिक सम्पदाहरू : २०५६ साल, राजकमलक कथासाहित्यमे नारी : २०६४ साल, लोकनाट्य : जट-जटिन : २०६४ : Cultural Heritage of Janakpur : २०६२ साल । मैथिली लोकसंस्कृति (आलेख संग्रह) २०६६ ।

विविध: आजको धनुषा : २०३९ साल, जनकपुर लोकचित्र: २०४६ साल । समयको अन्तराल पछ्याउदै (आलेख संग्रह, २०६६ साल) ठेकान पर (विचार संग्रह) ।

सम्पादन: मैथिली पद्यसङ्ग्रह : (नेपाल राजकीय प्रज्ञाप्रतिष्ठान) : २०५१ साल, लाबाक धान (कवितासङ्ग्रह) २०५१ साल, त्रिशूली (स्व. माथुरद्वारा लिखित खण्डकाव्य) २०४९ साल, नेपालक मैथिली पत्रकारिता : २०४४ साल, मैथिली लोकनृत्य : भावभंगिमा एवं स्वरूप (नेपाल राजकीय प्रज्ञाप्रतिष्ठान) २०६१, अन्तराष्ट्रिय मैथिली सम्मेलन आ नेपाल : २०६५ साल, हम और तुम (हिन्दी कवितासंग्रह) : २०६६ साल

सम्मान : नेपाल राजकीय प्रज्ञा-प्रतिष्ठानद्वारा प्रदत्त प्रथम 'मायादेवी प्रज्ञापुरस्कार' द्वारा सम्मानित : २०५२ साल, विद्यापति सेवा संस्थान, दरभङ्गाद्वारा 'मिथिला विभूति सम्मान, शेखर प्रकाशन, पटनाद्वारा "शेखर सम्मान', ने. मैथिली साहित्य परिषद्, जनकपुरद्वारा 'वैदेही प्रतिभा पुरस्कार',

बस, अब नहीं

(दीर्घ कविता)

रामभरोस कापड़ि 'भ्रमर'

अनुवादक
गोपाल अश्क



जनकपुर ललितकला प्रतिष्ठान

प्रकाशक : **जनकपुर ललितकला प्रतिष्ठान**
जनकपुर, धनुषा
फोन नं. ०४१-५२०२६७

आवरण र लेआउट : जयराम कुइँकेल

कम्प्युटर : प्रज्ञारानी शाह

प्रथम संस्करण : २०६६, भदौ

प्रति : ५०१

मूल्य : रु. १००।-

मुद्रण : हिसी अफसेट प्रिन्टिङ प्रेस, जमल, काठमाडौँ

Bas, Ab Nahi

(Poetry)

By: Ram Bharos Kapari, 'Bhramar'

समर्पण

उन कायर प्रेमियों के लिये
जिसे प्रेम मात्र अपने स्वार्थ के लिये
समझने का भ्रम भटकाता रहता है

‘eþl/’

kþfzsL0

नेपाल में मैथिली भाषा की स्थिति दूसरे स्थान की है। राष्ट्रिय जनगणना के माध्यम से जो परिणाम आया था उसके आधार पर दश वर्ष पहले लगभग २८ लाख भाषा-भाषी थे। अब यह सङ्ख्या निश्चय ही काफी आगे बढ़ गया होगा। इतने बड़े पैमाने पर भाषा-भाषी होते हुये भी अपनी मातृभाषा की पत्र-पत्रिकाएं पुस्तकें पढ़ने का उपक्रम कम ही किया जाता रहा है। परिणामत: मैथिली में इन माध्यमों का सर्वथा अभाव है। वैसे भी नेपाल में राजकीय संरक्षण प्राप्त 'नेपाली' के अतिरि-क्त अन्य भाषाओं में कुछ भी प्रकाशित करना घर का आटा गीला करना होता है। बाहिरी प्रोत्साहन के अभाव में यह स्थिति निरन्तर बनती रही है। फिर भी अपनी मातृभाषा से प्रेम करने वाले स्रष्टा निरन्तर लिख रहे हैं, छपा रहे हैं।

उन्हीं रचनाकारों में लब्ध प्रतिष्ठित हस्ताक्षर रामभरोस कापड़ि 'भम्रर' का साहित्यिक इतिहास पटना से प्रकाशित मैथिली की प्रतिनिधि साप्ताहिक पत्रिका 'मिथिला मिहिर' का १९६४ ई. के अंक में छपा बालकथा 'ईमानदार बालक' के प्रकाशन के साथ शुरू होता है। आज ई.२०१० तक आते-आते लगभग मौलिक एवं सम्पादित डेढ़ दर्जन से ऊपर पुस्तकों के रचयिता के रूप में अभी भी निरन्तर लेखन में हैं। आज से बत्तीस वर्ष पूर्व लिखी उनकी दीर्घ कविता 'नहि, आब नहि' ने उस समय छपने के बाद खूब चर्चा बटोरी थी। दो दशक के बाद उस का नेपाली अनुवाद नेपाली साहित्य के चर्चित हस्ताक्षर 'मनुबाज्राकी' के द्वारा आया। वह भी सराहा गया। अब उसी दीर्घ कविता का हिन्दी अनुवाद भोजपुरी साहित्य के स्थापित स्रष्टा व हिन्दी में समेत समान रूप से कलम चलाने वाले गोपाल अश्क जी के द्वारा हुआ है जिसे हमें

प्रकाशित कर अपार प्रसन्नता हो रही है। हम उन्हें भी धन्यवाद देना चाहते हैं।

हम समझते हैं- यह दीर्घ कविता सर्वकालीक व सर्वजनीन सत्य के साथ निरन्तर नयापन का स्वाद देती रही है। इसलिये हिन्दी के पाठकों को भी इस में वैसा ही आनन्द प्राप्त होगा, जैसा इससे पहले मैथिली व नेपाली के पाठकों ने प्राप्त किया था।

'**नहि, आब नहिं**' को '**बस, अब नही**' के रूप में लाने के हमारे प्रयास में जिन मित्रों का सहयोग हमें मिला है, खास कर हिसी अफसेट प्रिन्टर्स प्रेस के मालिक पुष्प जी को, हम हृदय से आभार व्यक्त करना चाहते हैं।

- ***जनकपुर ललित कला प्रतिष्ठान***

अनुवादक की कलम से

d}tf]a; oxL sxUf

नेपाली और मैथिली भाषा के साहित्य सृजन कर्म में मग्न व्यक्तित्व रामभरोस कापड़ि 'भ्रमर' की दीर्घ कविता - 'नहिं, आब नहिं' (मैथिली भाषा में रचित) का हिन्दी अनुवाद - 'बस ! अब नहीं', आप के हाथ में है। आज से तीन दशक पूर्व प्रकाशित इस कविता को जब मैंने पढ़ा तो लगा कि यह एक प्रेम काव्य है जिसका फलक संकुचित हो गया है। मैथिली साहित्य संसार में इसका स्वागत तो हुआ ही, साथ ही साथ मैथिली पाठक गण इस के रस में सराबोर भी हुये। यह अलग बात है, लेकिन इसका बिस्तार होना चाहिए। कुछ यही भाव मेरे मन में उत्पन्न हुए और मैंने इसका अनुवाद करने को सोचा। पहले अपनी मातृभाषा 'भोजपुरी' में अनुवाद करना चाहा और सोचा इस से मैथिली और भोजपुरी का सम्बन्ध और अधिक मजबूत होगा ! लेकिन तुरन्त एक विचार ने जन्म लिया-इसका अनुवाद हिन्दी में होना चाहिए। इसके दो फायदे होंगे- एक, नेपाली पाठक तक यह कृति पहुँच जाएगी ! क्योंकि नेपाल के लगभग सभी जागरूक एवं सजग पाठक हिन्दी बखूबी समझते हैं। और दूसरा-नेपाल के राष्ट्रीय साहित्य में अन्तर्सम्बन्ध कायम होगा।

नेपाल में हिन्दी लेखन की परम्परा लम्बी एवं समृद्ध है। इसकी शुरुआत - जोसमानी सन्तों के निर्गुण भजनों से होती है और आधुनिक नेपाल के निर्माता पृथ्वी नारायण शाह ने गुरु गोरखनाथ सम्बन्धी भजन लिखकर अविस्मरणीय योगदान दिया है। नेपाल में खड़ी बोली में रचना करने वाले साहित्यकारों में सर्व श्री भवानी भिक्षु, केदार मान व्यथित,

वि.पी.कोइराला का नाम सम्मान/आदर से लिया जाता है। इस परम्परा को आगे बढ़ाने वाली दूसरी पीढ़ी में कृष्ण चन्द्र मिश्र, धुस्वाँ सायमि, गौरी शंकर सिंह डा. राम दयाल राकेश आदि का नाम आता है। नेपाल के हिन्दी लेखकों की तीसरी पीढ़ी में राम भरोस कापड़ि 'भ्रमर' और गोपाल अश्क आते हैं। यद्यपि 'भ्रमर' की हिन्दी रचनाओं का कृतिगत प्रकाशन नहीं हुआ है तथापि इनकी फुटकल रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। साहित्यकार 'भ्रमर' ने अपनी मातृभाषा की सेवा में अपनी उम्र का बहुत बड़ा हिस्सा व्यतीत किया है। आधुनिक मैथिली साहित्य में इनका नाम सम्मान के साथ लिया जाता है।

प्रेम क्या है ? इस पर बहस करने का समय नहीं है। क्योंकि प्रेम को परिभाषित करना आसान नही है । यद्यपि पाश्चात्य एवं पूर्वीय साहित्यचिन्तकों ने प्रेम को परिभाषित करने का प्रयास किया है । अमरीकी लेखक एननीन ने कहा- **प्रेम एक आग है, जो जलाता नहीं शितलता प्रदान करता है** , तो हिन्दी उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने कहा- **प्रेम एक खुंखार शेर है जो अपने ऊपर उठने वाली आँखो को फोड़ डालता है**। जहाँ एक तरफ यह कहा गया कि प्रेम कब किस से, कहाँ और कैसे हो जाता है, पता नहीं चलता वहीँ दूसरी तरफ प्रेम में बलिदानी देने, त्याग देने की बातें कही गईं। सन्त कबीर के शव्दों में कहें तो- **प्रेम विश्वास है ! प्रेम में सिर्फ विश्वास होता है, प्रश्नचिन्ह नहीं**। इस तरह हम प्रेम को अलग अलग नजरिया से परिभाषित होते हुए पाते हैं। वस्तुत: प्रेम एक एहसास है, जिसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है, परिभाषित नहीं। इश्कमिजाजी से इश्कहकीकी तक के इस सफर को तय करना उतना आसान नहीं जितना कहा सुना जाता है।

प्रेम के इसी एहसास को कवि 'भ्रमर' ने बड़ी ही ईमानदारी एवं खूबसूरती के साथ अभिव्यक्त किया है-

कभी कभार सोचता हूँ -

तुम्हारा बसा-बसाया सुन्दर घर को मैं क्यों-

अपने उजडे हुए चमन के लिए बरबाद करूँ।

क्योंकि -

तुम बँध गई हो

किसी गैर के बन्धन में।

इतना ही नहीं कवि 'भ्रमर' ने प्रेम के वास्तविक स्वरूप को रेखांकित करते हुए प्रेम में उत्सर्ग हो जाने की बात कही है, यथा-

> **"तुम जाओ। मत करो मिलने की आशा**
>
> **सच में मिल नहीं सकता।"**

कवि ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा है -

> **मैं इस बार भी मनुष्य बनने का दर्द**
>
> **हृदय में छुपाए छटपटाता रह गया।**
>
> **स्नेह के ओझराए तार-तार को**
>
> **मैं विवश वादक की तरह**
>
> **कातर दृष्टि से निहारता रह गया**
>
> **यही देखने की प्रवृत्ति**
>
> **मेरी उपलव्धि हो गई है**
>
> **और प्रत्येक उपलव्धियों के साथ भटकना मेरी नियति।**

कवि ने वैक्तिक भावनाओं को उजागर तो किया है किन्तु साथ ही साथ समष्टिगत भाव को भी आलोकित किया है। कल और आज के प्रेमिल वातावरण में अन्तर आ चुका है। पहले प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे की

चाहत के लिए उम्र भर दर्द छुपा लेते थे और एक दूसरे के लिए जान तक न्यौछावर कर देते थे। सामाजिक मर्यादाओं के सामने मौन हो जाते। दैहिक मिलन को प्रेम का अंतिम लक्ष्य नहीं मानते। किन्तु आजकल के प्रेमी-प्रेमिका वियोग के गीत नहीं गाते। मिलने के लिए नहीं तड़पते, बल्कि तड़पाते हैं। अब तो प्रेमी-प्रेमिकाएँ मिल कर ही दम लेते हैं। चाहे इसके लिए उन्हें कुछ भी करना पड़े। कहने का तात्पर्य यह है कि- प्रेम का अर्थ बदल गया है। प्रेम ने एक रिश्ता का रूप धारण कर लिया है। जबकि सच्चाई यह है कि सम्बन्धों से प्रेम नहीं पनपता बल्कि प्रेम पनपने से सम्बन्ध बनते हैं। प्रेम सम्बन्धों के ऊपर की चीज है।

ज्यादा क्या लिखूँ! प्रेम की भावभूमि पर आधारित इस काव्यकृति ने मुझे इस कदर आकर्षित किया कि मैंने इसका अनुवाद करने की ठान ली और अनुदित कृति आप के हाथ में है। मैं भी कवि की वाणी में बोलते हुए अपने को आप एवं काव्य-कृति - **'बस ! अब नही'** के बीच से अलग करता हूँ

उदास-उदास लगता घर आँगन में

जान फुँकने का जब भी करता हूँ प्रयत्न

तो दोषी हो जाता हूँ।

संस्कार की पीड़ा से उबरने के लिए किया गया

मेरा प्रत्येक प्रयत्न-

लोगों को जाने क्यों अच्छा नहीं लगता

मैं उनकी नजर में क्या-क्या हो जाता हूँ !

- गोपाल अश्क

bf]zAb

अङ्ग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कवि विलियम वर्डसवर्थ ने एक स्थान पर लिखा है-

'What is a poet ? '

He is a man speaking to man : a man, it is true, endowed with more lively sensibility, more enthusiasm and tenderness, who has a greater knowledge of human nature and a more comprehensive soul, than are supposed to be common among mankind.'

आज के सन्दर्भ में अ-लेखन (Ante-creation) का प्रायोगिक नमूना लम्बी कविता है। प्रयोगवादी काव्यधारा में प्रवाहित एवं प्रचलित लम्बी कविता पश्चिमी काव्यधारा की देन है। अङ्गेजी साहित्यमें T.S. Eliot की लम्बी कविता The waste Land प्रसिद्ध है । हिन्दी साहित्य में लम्बी कविता लेखन की सुदीर्घ, सम्पन्न और समृद्धशाली परंपरा रही है। आज का युग महाकाव्य और खण्डकाव्य का नहीं रह गया है। अत: कविगण लम्बी कविता लेखन की ओर अग्रसर होने लगे है। एक लम्बी कविता में बहुत कुछ कहा जा सकता है । आज के इस अन्तरीक्ष युग में कविता के कलेवर में विस्तार एवं विस्तृति आना अस्वाभाविक नहीं है। कविता लम्बी हो अथवा छोटी हो यह अर्थपूर्ण नहीं है, बल्कि अर्थपूर्ण यह है कि उसमें काव्यात्मकता और कलात्मकता बरकरार है या नहीं, कविता मानवीय संवेदन को स्पर्श करती है कि नहीं । यदि मानवीय संवेदन को स्पर्श करती है तो कविता आकार प्रकार में छोटी होने पर भी मार्मिक, मर्मस्पर्शी और मर्माहत कर देती है और लम्बी कविता भी यदि इस गुण से समन्वित है तो हमारी संवेदनाको सुगबुगाती है। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की लम्बी

कविता 'राम की शक्ति पूजा' में महाकाव्य रामायण की सम्पूर्ण विशेषताएँ समाहित है । इसे आद्योपान्त अध्ययन करने पर या पाठ करने पर सम्पूर्ण रामायण का सार हमारे मानस पटल पर साकार हो उठता है । अत: 'राम की शक्तिपूजा' कालजयी लम्बी कविता सिद्ध हो चुकी है । हिन्दी काव्य जगत में इस परंपरा में असङ्ख्य हिन्दी कवियों का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है ।

नेपाली काव्य जगत में भी लम्बी कविता लेखन की परंपरा पुरानी है । इस परंपरा को पुष्ट करने में अनेक स्वनामधन्य अग्रज कवि अग्रणी भूमिका निर्वाह कर रहे है । मैथिली साहित्य में लम्बी कविता लिखने वालों में रामभरोस कापड़ि 'भ्रमर', धर्मेन्द्र विह्वल का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है । विह्वल की पुस्तकाकार लम्बी कविता का शीर्षक है 'एक सृष्टि : एक कविता', रामभरोस कापड़ि 'भ्रमर' की कविता का शीर्षक है '**नहि, आब नहिं**' ।

उपरोक्त कविता का हिन्दी अनुवाद '**बस, अब नहीं**' प्रस्तुत है हिन्दी पाठकों के समक्ष । यह एक सफल लम्बी हिन्दी कविता में दर्ज की जा सकती है । इस कविता में मिथक, बिम्ब और प्रतीक का संयोजन सराहनीय है । कवि विश्रृंखलित भाव धारा में भी समन्वय स्थापित करने में सफल हैं । इसका बिम्ब-बिधान और प्रतीक बिधान में भी मिथिला की मिट्टी की सोंधि हुई गंध समायी दुई सी लगती है । मिथिला की मिट्टी उर्बर और उर्जाशील है । इसमें ताजापन की टटकी अनुभूति अभिव्यञ्जित हुई है । भाषाशैली में सरसता घूली हुई है । लम्बी कविता होते हुए भी यह उबाऊ नहीं है । भाषिक प्रयोग मन को भाता है । यह कविता पाठकों को प्रारंभ से अन्त तक अपनी काव्य शैली की विलक्षण शक्ति से बांधे रखने में समर्थ है । ऐन्द्रिक संवेदना को भी कभी कभार

झकझोर देती है, झंकृत कर देती है। मैंने कहीं पढा है 'आज की कविता Time और Space से टकराती है। भाषा और भावबोध कहीं से भी Loud नहीं है।' क्रान्तिकारी कविताओं जैसी नारेबाजी है, मनुष्य जिन जटिल, असुरक्षित और भयावह स्थितियों में फंसा है वैसा पहले नहीं था। हाल के वर्षों में मानव सभ्यता ज्यादा संकट संत्रस्त हुई है, कारण भूमंडलीकरण और पूँजीवाद के वर्चस्व के कारण बढता बाजारवाद है।'

कवि कापड़ि का केन्द्रिय क्रन्दन वर्तमान से टकराता है। वर्तमान आदमी का आघात मनुष्य बन जाने का दुखद दंश, अस्तित्व का रूदन आदि इस कविता का वर्ण्य विषय (Theme) है। कवि की स्पष्टोक्ति को पाठक सहज ही स्वीकार कर सकते हैं -

'मेरे वर्तमान के साथ यदि तुम नहीं आना चाहती हो

तो यह कोई बुरी बात नहीं-

मै तो खुद भागना चाहता हूँ,

वैसे कभी कभार तुम्हारा सान्निध्य

मुझे पागल बना देता है

मैं तुम्हारे दिए गए बोल बचन पर

अनायास पुनर्विचार करना चाहता हूं।'

वैसे '**बस, अब नहीं**' मैथिली भाषा से हिन्दी भाषा में अनुदित लम्बी कविता है लेकिन पढने से लगता है कि यह मौलिक कविता है। इसकी मौलिकता अनुवाद में भी अक्षुण्ण है। कवि कापड़ि की कलम से और ऐसी लम्बी कविताओं की आशा करता हूं।

कृष्णाष्टमी
२०१०

• रामदयाल राकेश
संप्रति : प्रयागमार्ग, शान्तिनगर, काठमाण्डौ

lxGbL ;+s/0f s]axfg]

मैथिली साहित्य में मैं एक भाग्यशाली कवि हुआ जिसे पहली बार कोई दीर्घ प्रेम कविता लिखने व प्रकाशित कराने का अवसर मिला। मैथिली भाषा की अति प्रसिद्ध स्थापित पत्रिका 'मिथिला मिहिर' में इसकी कई समालोचनाएं छपीं। नेपाली साहित्य के मूर्धन्य कथाकार, गजलकार मनुबाज्राकी ने इसका नेपाली अनुवाद किया था जो ने.रा.प्र.प्र. की पत्रिका 'कविता' में छपा। बाद में उसका पुस्तकाकार प्रकाशन भी हुआ। आज उसका हिन्दी अनुवाद भी जब छप रहा है तो तीन दशक पूर्व लिखी उस दीर्घ कविता के बारे में इसी बहाने कुछ कह मन को हल्का करने का जी चाहता है।

इस दीर्घ कविता का प्रथम पुरुष को मैं नजदीक से जानता हूँ। गो कि वे मेरे समकालीन हैं, उनका जीवन-चर्या के बारे में विस्तार से जानने में कोइ कठिनाई नहीं होती है। इसीलिये भी मैं सम्भवत: कुछ ज्यादा ही लिख पाया हूँ। बात इतनी सी नही हैं। मेरे और उनके सम्बन्ध इस तरह घनिष्ठ हो गये हैं कि कभी-कभी मैं खुद उनके इतिहास के पन्नों में खो जाता हूँ, वर्त्तमान के उबड़-खाबड़ सरजमीन में उनके साथ लोटता-पोटता रहता हूँ। उनके सपने, उनकी व्यथा और उनका सच सब मेरे हो जाते हैं, मैं कभी-कभी तो एकाकार हो जाता हूँ।

'**बसं, अब नहीं**', के इन्हीं कई क्षणों में मैं खुद को इस तरह समर्पित कर दिया हूँ कि गोया प्रथम पुरुष की कहानी उनकी न होकर मेरी बनती नजर आने लगती है। और तब कुछ समालोचक मित्र उलाहना तक कर बैठते हैं- कई एक जगह पर आप वैयक्तिक हो जाते हैं, निजत्वको उघार

कर रख देते हैं। मैं अपने उन मित्रों को प्रथम पुरुष से अपनी यारी व उससे उत्पन्न यह विसंगति को हल्के ढंग से कह सन्तुष्ट करने का प्रयत्न के सिवा और क्या कर सकता हूँ।

रचनाएं मन के भीतर चल रहे उथल-पुथल की शाब्दिक अभिव्यक्ति होती है। हम खुद की भावनाओं को, भोगे यथार्थ को कलम की स्याही से शव्द का आकार देते हैं, जिसे देख मन में कहीं भीतर तक एक आनन्द सा होता है, नव जीवन प्राप्ति का सुख मिलता है। '**बस, अब नहीं**' की रचना का यही उपलव्धि इसे आज तक जीवंत रखा है और मैं भी इस तीन दशक के अन्तराल के बावजूद इससे दूर नहीं जा सका।

यह सत्य है- विगत के भोगे इन दुखों के क्षणों की टीस आज भी प्रथम पुरुष भोग रहा है, जिसे मैं बार-बार महसूस करता हूँ। मेरी यही अनुभूति ने मुझे बाध्य किया कि अपने दृढ़ संकल्प से पीछे हटने की जो गलती प्रथम पुरुष ने किया है, उसे उपसंहार के रूप में क्यों न रखा जाए। तीन वर्ष के अन्तराल में बहुत कुछ बदला है। परिवेश, स्थिति, भौतिक अथवा सामाजिक धरातल। पर नहीं कुछ बदला तो अतीत के कटु-मधु क्षणों का दिया हुआ दर्द व वर्त्तमान में फिर से वही गलती दोहराने का अपराध बोध।

मैंने बहुत सोचकर प्रथम पुरुष को उन्हीं के इच्छा अनुसार वर्तमान के कठघरे में खड़ा करने का प्रयास किया है, जहां उसने अपना अपराध कबूला है। मात्र कबूला भर नहीं है, खुद के लिये फैसला भी सुनाया है। विवश भरी जिन्दगी का हुकुमनामा... ।

आज अपने ही फैसले के तहत वह खुद को नीयति से बांधे जी रहा है। उस की चाह उसके भीतर घुट-घुट कर दम तोड़ रही है। हां, जीने का एक मात्र सम्बल है, उसकी खुद की गलतियां, जिसे स्मरण कर वह आगे बढ़ना चाहता है। अभी भी बिखरे कणों को जोड़कर जो आकृति बनायी जा सकती है, वह फिर एक धोखा के सिवा कुछ नहीं होगा ,यह उसे मालूम है। इसीलिये अब सम्भवत: प्रथम पुरुष अपने ही फैसले में कैद होकर रह जायेगा- **'बस, अब नहीं' !**

मेरी यह रचना जिसे मैं काफी पसन्द करता हूँ, मित्रवर गोपाल अश्क ने हिन्दी में लाकर मुझ पर अच्छा खासा उपकार किया है। मैं सहकर्मी प्रथम पुरुष के जीवन यथार्थ को और वृहत् क्षेत्र में भेज सकता हूँ, उनके सुख-दुख में सहभागी बना सकता हूँ।

इसके प्रकाशन के क्रम में प्रत्यक्ष व परोक्ष सहयोग करने वाले तमाम मित्रों और सहयोगियों को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

हाल : मैतीदेवी, काठमाण्डू — *- रामभरोस कापड़ि 'भ्रमर'*

भाद्र, २०६७



बस ! अब नहीं

नहीं, अब मुझे इतिहास नहीं चाहिए।

बहुत थकुचा चुका मेरा कोमल हृदय

इस इतिहास की दहशत भरी गति से

इसलिये उठा नहीं सकता अब यह भार।

मैं समझता हूँ- तुम्हारी तिरछी निगाहों से देखने का
रहस्य

या लटका हुआ मुँह लिए- खट/खट सींढ़ी उतर जाने की व्यथा,

मैं चाह कर भी रोक नहीं सका। डर लगता है अब-

इतिहास ने मुझ को कायर बना दिया है।

वैसे ही कभी किसी के आँसू भरी आँखों की पीड़ा समझ-

रोकने के लिए किया था प्रयत्न,

दो शब्द सहानुभूति का कह - कुछ कर देने का दिया था वचन-

मुदा उसने उसे अपने पापों का ढक्कन बना लिया-

भजा ली उसको।

अपनी तुच्छ क्षुधा के लिए।

इसीलिये, किसी के आँसू की व्यथा, मेरे प्यासे हृदय की टीस
लगती है

घुमने लगता हूँ मैं अपना धांगल अस्त-व्यस्त इतिहास के पन्नों में



मैं सदैव सशंकित रहता हूँ।

इस अपरिचित अवस्था में तुम्हारे वास्तविक दर्दों में भी

मैं अगर काम नहीं लग सका तो यह मेरा दोष नही होगा

इतिहास का दोष होगा (समझना, मैं पूर्ण असमर्थ हूँ)

इतिहास खुद को दोहराता है

मुदा मेरे इतिहास की पुनरावृत्ति आत्मा की छटपटाहट होगी

वर्त्तमान परिवेश के प्रति तुम्हारी असंतुष्टि-

और इस असंतुष्टि से उबार लेने का मेरा सामर्थ्य (तुम्हारे ही विश्वास में)

तुम्हे भ्रम जाल में फंसा रखा है।

मैं खुद इतना उलझा हुआ हूँ कि किसी को सुलझाने का

अथवा अपनी उलझन भरी स्थिति से मुक्त हो सकने का

सभी सामर्थ्य समाप्त हो चुके हैं

क्या याद नहीं आती ?

कितनी बार तुमने अपने होठों को उपेक्षा में बिचका कर-

मुझे कहा था-

'कैसे बहक गये आप- फलांपुर वाली को लेकर'

और मैंने अच्छी तरह से समझाने का किया था प्रयत्न,

ऐसे ही आँसू भरी आँखो की व्यथा को कहा था सुना था



परन्तु तुम्हारे चेहरे के भाव में थोड़ी भी कमी नहीं दिखी थी

फकत अविश्वास किया था तुमने मेरे ईमान पर ।

मुदा आज- तुम्हारी वही स्थिति देखकर -

मन विचलित हो जाता है-

नहीं ; अब नहीं ;

मुझे इतिहास नहीं चाहिए ।

दुनिया के किसी कोने में कुपात्र बनकर

जीने की हो गई- है इच्छा ।

नियति के मार से प्रताड़ित मैं ही क्यों ?

कहीं मनुष्य की संगति में रहकर

मनुष्य की बोली-व्यवहार में रम जाने का

यह दंड तो नहीं !

कभी-कभी अपने परिवेश के प्रति साकांक्ष होकर सोचता हूँ-

तो वही एक पीड़ा

मनुष्य बन जाने का दंश-

कहीं आघात करता हुआ समझ में आता है ।

तभी तो !

दूसरी बार मेरा देह भर दप-दप करता

माँ की पीड़ा के बीच-



तुम्हारा आगमन,

और वैसी अवस्था में भी तुम्हारे अस्तित्व के बारे में

गहराई से सोचने का क्रम

पुनः तुम्हारी वर्त्तमान स्थिति से प्रायः सन्तुष्टि की अभिव्यक्ति

मुझे कितना आघात करता रहा

क्या सचमुच तुम सब कुछ भूल सकती हो ?

तब तुमने क्यों किया था उस तरह का निवेदन ?

मेरे वर्त्तमान के साथ यदि तुम नहीं आना चाहती हो

तो यह कोई बुरी बात नहीं -

मैं तो खुद भागना चाहता हूँ।

वैसे कभी-कभार तुम्हारा सान्निध्य-

मुझे पागल बना देता है,

मैं तुम्हारे दिये गये बोल वचन पर

अनायास पुनर्विचार करना चाहता हूँ।

(यह जानते हुए कि यह तुम्हारे साथ साथ खुद पर अन्याय होगा)

कभी-कभार सोचता हूँ-

तुम्हारा बसा-बसाया सुन्दर घर को मैं क्यों-

अपने उजड़े हुए चमन के लिए बरबाद करूँ-

यह तो एक और भयंकर गलती होगी।



मै तो राँड़-मुसमात की तरह हर सुहागिन को आशीर्वाद देना चाहता हूँ

मेरी तरह हो जाओ !

इसी मानसिक वहशीपन के चलते

एक बसा हुआ घर उजड़ते-उजड़ते बसा था-

मैं पुनः अपना उजड़ा हुआ डीह पर झख मारता रह गया था

और वह अपने घर संसार में रस-बस गई थी-

इसीलिये मेरे वहशीपन का प्रतिफल कोई और क्यों उठाए,

तुम भी क्यों ?

मुझे तुम्हारी अल्हड़पन-चंचलता अच्छी लग सकती है,

तुम्हारे अति सुन्दर व्यक्तित्व के परिपार्श्व में-

दबी हुई चारित्रिक दृढता-

मुझे पागल बना सकती है,

रुठने के वक्त मनाने के लिए मेरे वदन पर

तुम्हारा लोटना

अथवा तिरछी निगाहों से देखते हुए मुँह-बिचुका कर

मुस्कुरा देना-

मुझे धन्य कर सकता है

इतना ही नहीं-



मुझ से मिलने के लिए घर से बहाना बनाकर -

हाट-बजारों में आने का उत्जोग करना

मेरे हृदय को छू सकता है

वह भी मुझे पसन्द हो सकता है।

'मेहमान' की हरेक व्यथा खुशी में

शामिल होने की तुम्हारी लालसा

तुम्हारे प्रति मेरे मन में स्नेह की बाढ़ उमड़ा सकती है

मुदा क्यों और किसके लिए।

तुम्हारे प्रत्येक क्रियाकलाप की सुन्दरता मोहकता

मेरी भावुकता को मात्र सन्तुष्ट कर सकती है

तुम 'मेरी' नहीं हो सकती।

निश्चित से जीने के लिए -

एक मुट्ठी स्वच्छ आसमान की खोज में-

पागलों की तरह घुमने के प्रतिफल में

तुम्हारा व्यवहार मुझे अच्छा लग सकता है।

आसमान की खोज में भ्रम को पालता दौड़ता मैं-

तुम को भी इक टीस भरा भ्रम के अलावा

कुछ नहीं समझता हूँ।

दायें हाथ की अनामिका अँगुली की जड़ में



स्वास्थ्य रेखा के ऊपरी कोर पर -

अगल-बगल में खीची हुई रेखाओं के -

बार-बार निहार कर देखने का किया जाना प्रयत्न भी

नियति को बदल नहीं सकता है।

एक स्पष्ट रेखा को छोड़ कर

दो छिन्न भिन्न रेखाओं की मान्यता

बसाने का नहीं उजाड़ने का द्योतक है।

सो कर्म पर सदैव विश्वास करने वाला मुझे-

ज्योतिष और भाग्य पर निर्भर रहने की सजा सहना पड़ रहा है।

कर्म प्रतिफल के उत्कर्ष तक पहुँच

अनायास ढह जाता है।

और तब मेरी नजरें यूँ ही हाथ के पोर-पोर को देखती रह जाती हैं

मेरे सामने पालकी में बैठी हुई-

मेरी सम्पूर्ण खुशियाँ नियति को निगल लेने का भान होते हुये भी

उधर देखने का साहस नही होता।

परोक्ष में अस्तित्व की पीड़ा से छटपटाती आत्मा लेकर

पुन: यत्र-तत्र भटकने का क्रम चलता रहेगा

यही मेरी नियति है।



ठीक ही है-तुम्हारी दूरी ही सही

तुम्हारे सान्निध्य से प्राप्त पीड़ा की व्यथा

दूरी के अभयन्तर मन को भुलाने का बहाना होगी

इसी लिये समेटो अपना जंजाल ।

अब मैं अपना घायल इतिहास को

दोहराना नहीं चाहता हूँ ;

चातक के कातर स्वर के चक्कर में पड़ कर

मैं अब और अपना जीवन तबाह नहीं करना चाहता

मुझे छोड़ दो एकान्त में अकेला-!

मैं अपनी खुशियाँ भले ही सबों में बाँट दूँ

मगर दु:ख का बोझ अकेले ढोते रहना मेरी नियति है ।

इसलिए मैं अकेला ही इसे ढोना चाहता हूँ-

तुम बेवजह मेरा मन नहीं बहलाओ ।

दूसरों की आश में जीने वाली तुम

जैसे भी खुश ही रहोगी !

और मैं इधर अपने आँसुओं की पृष्ठभूमि में-

अपना अस्तित्व खोजने की मूर्खता करता रहूँगा ।

इसलिए मुझे एकान्त चाहिए -नितान्त एकान्त !

\+ \+ \+



तुम्हारे साथ बढ़ता हुआ मेरा स्नेह
एक भयंकर अपराध रहा है -
यह मैं समझता आया हूँ !
प्रेम करने का अधिकार न तो तुम्हे है
न मुझे ।
हम दोनों हीं अपनी सीमा में बँधा हुआ
बिका हुआ 'माल' हो गये है ।
मुदा सिद्धान्त की बातें हृदय नहीं मानता
स्नेह का ज्वार समुद्र की लहरों की तरह -
हिलोड़े मारता एक दूसरे में समा जाने की नियति से -
प्रतिबद्ध रहता है
और इसलिए मैं और तुम दो राहों का राही होते हुए भी
अनायास किसी मोड़ पर मिल कर
भावनाओं के आदान-प्रदान करने का अवसर खोज ही लेते हैं ।
और अब बिछुड़ जाने के बाद स्मृति के दंश की पीड़ा-
एक बार फिर तुम्हारी याद दिला देती है -
(मतलब । एक बार फिर अपराध करने का मन होता है)

\+ \+ \+



उदास-उदास लगता घर आँगन में-

जान फूँकने का जब भी करता हूँ प्रयत्न

तो दोषी हो जाता हूँ।

संस्कार की पीड़ा से उबरने के लिए किया गया

मेरा प्रत्येक प्रयत्न-

लोगों को जाने क्यों अच्छा नहीं लगता,

मैं उनकी नजर में क्या-क्या हो चुका हूँ।

अपनी तरह से दुनिया को देखने की-

दुष्प्रवृत्ति अन्दर में पाले हुए-

नारायण की माँ

मेरे घर भरने को

अथवा मन भरने का बहाना खोजने की प्रवृत्ति से

खिन्न रहती है

मतलब मैं बिगड़ चुका हूँ - सात घाट का पानी-

पीनेवाला हो चुका हूँ।

किसी का करकस और जिद्द भरा

बोझल परिवेश से कुछ समय के लिए भी

उबर कर हल्की साँसे लेने का मेरा उपक्रम

मुझे बदनाम कर देता है -



मैं क्या करूँ ?

किस के पास वक्त है कि मेरे इस शून्य परिवेश को

भर देने के लिए देता कोई रास्ता

मन को भुलाने के लिए करता कोई प्रयत्न ।

वैसे थोड़े वक्त के लिए ।

मेरी विचलित मनः स्थिति का साथ देने के लिए

कितने लोग आए हैं,

परन्तु वे सभी एक और गहरी

पीड़ा के अलावा कुछ भी नही दे सके !

साथ देने का बड़े-बड़े आश्वासन देते हुए भी

सभी ने भजा लिया सुविधा के लिए

आत्मीयता को,

और मैं उसी तरह अपना उदास खाली-खाली घर के प्रत्येक सामान में

अपना अस्तित्व का संरक्षण खोज रहा हूँ ।

लोग कहते हैं -समझौता कर लूँ ।

परन्तु कहनेवाले, करनेवाला का दर्द नहीं समझ पा रहे ।

समझौता करना बेशक आसान होता है -

निर्वाह करना कठिन हो जाता है ।



और मेरे समझौता का प्रारूप

नितान्त अनमेल परिसर के धरातल पर अवस्थित है

जिसके स्थायित्व पर

मुझे सदैव सन्देह रहा है।

इसीलिए, अब नियति के हाथ में अपने को छोड़ने के सिवा

और कर ही क्या सकता हूँ;

खोंते की चिड़ियाँ की तरह पुनः पलट-

डरावना लग रहा बास में प्रवेश करने की मेरी अनुभूति-

मुझे कमजोर बना दी है,

मैं डरपोक हो चुका हूँ।

तभी तो किसी के निवेदन के ओझराहट में उलझ कर शिथिल हो

बेवजह जोखिम उठाता रहा हूँ।

इसलिये मेरी यह कमजोर काया किसी का संरक्षण नहीं

खुद के लिए बोझ बनने की कगार पर पहुच चुकी है

विचारो हे आत्मीय !

मत डालो मुझे अब और किसी उलझन में-

परत दर परत ओझराता एक इतिहास का दर्द -

सर पर लादे हुए ससर रहा हुँ एकांत की तरफ-

अकेले जीने के लिए।

\+ + +



मेरे सामने से जाती लालकी पालकी
अथवा महफा-कँहार की डोर ने
मुझे आक्रांत कर डाला है।
मुझे साड़ियों से ओहार लगाया हुआ
प्रत्येक लालकी पालकी में-
मेरी आशा-आकांक्षाओं की चिता सजी सी लगती है
मैं दागबत्ती देने का साहस नहीं कर पाता हूँ।
इसीलिए हे लाल ओहार में दबी
आँखो मे आँसू लिए प्रतीक्षित मेरी प्रिया,
मेरी प्रतीक्षा करने का भ्रम मत पालो
मैं नहीं आ सकता।
तुम्हारी आँखों के आँसू
मेरे भविष्य के प्रति ईमानदार नहीं हो सकते,
तुम बँध गई हो -
किसी गैर के बन्धन में
जहाँ जाकर रहने का साहस तुमने -
आँखों में आँसू सजा-सजा, कर डाला है।
और मुझे तुम्हारा यही चेहरा
और कठिन लग रहा है।



बड़ी आशा आकांक्षाओं से सहेज रखा था

तुम्हारी स्मृति हृदय में,

कुछ पाने का नितान्त भ्रामक उहापोह ने

बिछड़ने की इस घड़ी मे मुझे जलील कर डाला है।

मैं और जलील नहीं होना चाहता

तुम जाओ, मत करो मिलने की आशा

सच में, मैं मिल नहीं सकता

या न मिलने की साहस जुटा ही सकता

मैं जानता हूँ, मेरा रुखा व्यवहार

तुम्हे अच्छा नहीं लगेगा

तुम सोच सकती हो

एक ही जगह का रहने वाला और "मैं ही या वह ही"

कहने वाला आज मिलने से भी गया!

मेरी क्या गलती ?

मैं यह भी जानता हूँ- यह तुम्हारा सोच होगा

तुम अपनी ही नजरों से दुनिया को देखने की

बार-बार गलती करती आ रही हो।

परन्तु अब नहीं

यह गलती दोहराने का जोखिम अब मत उठाओ,



छोड़ दो यह मोह,

जाओ, खुशी से अपने घर जाओ ।

समझना -यह हमारी संगति

एक टीस भरी स्मृति थी - समय का धोखा थी ।

समेटो अपना घर संसार

उजड़ने दो किसी का चमन

जिसे तबाह होना ही अभीष्ट था अब तलक ।

+ + +

एक पल की जिन्दगी के लिए

दर-दर भटकने की प्रवृत्ति

तुम्हारी उपस्थिति से

रुक नहीं सकती थीं,

यह मुझे विश्वास है -।

(कुछ समय के लिए रुकना स्थिरता का भ्रम दिला सकता है)

इसलिए अपने अस्तित्व-बोध से

मुझे बरगलाने का प्रयत्न मत करो,

बेवजह मुँह बिचका कर अथवा देह पर लोटकर

मेरी ध्वस्त मन:स्थिति को और

खण्ड-खण्ड मत करो ।



रहने दो, हे 'दाई' !

बहुत देखा है मैंने भी

परती में पड़ा बेजान जीव पर

लुढकता/झपटता हुआ गिद्धों का झूण्ड ।

गिद्ध का शिकार बनने से अच्छा

स्वयं 'आत्मदाह' करने का मेरे निश्चय को

अब और खण्डित करने का मत करो प्रयत्न

यह अन्याय होगा ।

जीयो अपने घर संसार में

रहो खुशी बँटोरते-

मुझे संतोष है ।

बल्कि मैं चाहूँगा कि

मेरी 'आत्मदाह' की प्रक्रिया से

तुम भी खुश रहो ।

(गर नही तो निर्विकार रह ही सकती हो !)

इसी तरह का बहुतेरे आत्मीय चुप,

निर्विकार हो मेरी 'आत्मदाह' की

पूर्णाहुति देखने के लिए बैठे हुये हैं !

जाओ, तुम निश्चिन्त होकर



मेरी तरफ पलट कर देखने अथवा

मेरे लिये सर पिटने की

कोई जरूरत नहीं,

मैं ऐसे ही खुश हूँ ।

\+ + +

चाय की गर्मी का सदैव ध्यान रहते हुये भी

बार-बार पीने को हो गया हूँ बाध्य

और प्रत्येक चुस्की के साथ

होठ जलाकर -

शरीर में स्फूर्ति का भ्रम पैदा करता आ रहा हूँ।

कहते हैं-

आधुनिक जीवन के लिए

चाय की जरूरत महसूस होती है,

चाय से अधर जलाने की आदत

मस्तिष्क को साफ कर

जीवन सञ्चार लाती है,

मनुष्य एक बार फिर गरदन काटने का

साहस जुटा पाता है।

वैसे चाय पीने की मेरी आदत नहीं है



और न है जीभ जलाने का

कोइ शौक,

वह तो ग्रामीण स्वच्छता को छोड़

शहर का महकता परिवेश में आने का यह है प्रतिफल-

जो आदतन यहां मुझे यह अपनाना पड़ा है।

मेरे मित्र, मेरे सहपाठी

मेरे पड़ोसी, मेरे नगरवासियों ने

एक उच्चता के बोझ से दबा हुआ

या हीनता के आग्रह से ग्रस्त

अपने क्रियाकलाप के साथ

मुझे भी ले आया है अपने साथ

औ मैं खुद को

उसी नक्कली आदर्श का

अनुयायी बनाने के लिए-

कितने वर्षों से पीता रहा हूँ चाय।

और अधर जलाने की पीड़ा अभी तक

ढोता रहा हूँ निरन्तर।

मेरी चाय की प्रत्येक चुस्की में

इतिहास छुपा है -



मेरी यह विक्षिप्त अवस्था का रहस्य की कथा !

\+ \+ \+

मधु या माधुरी -

कुछ इसी तरह का नाम था उस जीव का

जिसने अनायास अन्त: करण में कहीं जिजीविषा की

आकांक्षा भर डाला था।

एक बँधी-बँधाई जिन्दगी की धारा से हटकर

कुछ नये-स्वतंत्र सोच की

अन्त प्रेरणा दी थी-

और मैं उसके प्रत्येक सान्निध्य की सरसता को

आकमाल करने का

बचपना करता रहा।

जिन्दगी की राह में ता-ता थैया करने का

अभ्यास के क्रम में उसकी उपस्थिति

उत्साह और प्रेरणा से भरी होती थी।

मुझे याद है

किताब कापी के बीच सदैव घुमता हुआ

उसका चेहरा -

मुझ में स्फूर्ति पैदा करता रहा।



(मैं भुसकौल कभी नहीं हुआ !)

मेरे मद्धिम स्वर को भी सुनकर

घर से बाहर निकल कर कुछ कहने की लालसा

उसके मन की व्यथा कहती रही।

अलबत्ता जिसे अच्छी तरह से समझने का

मुझे ढंग कभी नहीं हुआ।

और इसीलिए -

पुरुष से पूर्व ही परिपक्व होता नारी का अन्तर विज्ञान को

मैं समझ नहीं पाया था।

आँखो की भाषा से मन की व्यथा-

कहने की उसकी इच्छा।

मैं कभी भी सहेज नहीं सका।

और ना ही, मैं अन्त में

रोक ही सका उसके पीले ओहार को-

जो उसे मुझ से दूर -

बहुत दूर ले जा रहा था।

जीने की उत्कट लालसा को-

सम्पूर्ण स्वीकृत सत्य

अपने में समेटते हुए जा रहा उस जीव को



एक पल रुक जाने के लिए

अवाज देने का साहस भी नहीं जुटा पाया था।

(अधिकार-परिवर्तित हो चुका था)

मुझे पहली बार अपनी गलती का

एहसास हुआ था।

हर-फार मजदूरों के बीच जीते के लिये

एक मुट्ठी स्नेहिल सम्पर्क-

अथवा किसी की आत्मीयता पाने का उपक्रम

महान अपराध होता है।

बचपन में गाँव से दूर

अपने लोगों के सान्निध्य से अलग

जीने के लिए बाध्य किसी जीव को

किसी का प्रेम पाने का अधिकारी नहीं

होने का यह प्राकृतिक इन्साफ का

मुझे पहली बार अनुभव हुआ था

और मैं मौन रह गया था।

अलबत्ता उसके द्वारा छोड़ा गया

स्नेह पाथेय

मुझे मनुष्य बनने की राह की ओर



आगे बढ़ाया था

जिसका सुफल (या कुफल !)

मैं अब तक भोग रहा हूँ।

समय बढ़ गया और मैं

सर धुनता झक्ख मारता रह गया।

हे मेरा अदृष्ट !

साक्षी रहना इन दुर्दान्त क्षणों का

जिसके लिए मैं कभी भी तैयार नही था।

\+ + +

गाँव के लोग। कहीं लोग होते हैं;

वे माँ को माँ समझते हैं,

बाप को बाप समझते हैं

भाई को भाई समझते हैं

समाज को सहयोगी समझते हैं

अपने तो अपने

पराये का भी अपना समझते है।

इतनी बेवकूफी करने वाले लोग

कहीं मनुष्य हुए हैं।

वे तो गाँव के लोग 'होते हैं- कूपमण्डूक'



ईनार का बेंग !

(आह ! शहरी, विकृति से रहते हैं अछूत !)

मनुष्य बनने के लिए तो चाहिए -

सम्बन्धों का अंतिम 'रिश्ता' का आडम्बर,

खुद को जीने के लिए' आत्म केन्द्रित मन:स्थिति

घरवाली के नखरा में उलझा हुआ

उसके इशारों पर 'जमूरा' का शो करने वाला

कोई प्रदर्शनकारी जीव ।

यहाँ आने पर गाँव और शहर का यही अन्तर

बार-बार अनुभव होता रहा ।

अपने को इसी माहौल में नितान्त अकेला पाकर

किसी स्नेही- किसी अपने की तलाश करता रहा-

जो इस तरह के मानसिक द्वन्द्व से मुझे ऊबार सके

और बता सके कि-

यहाँ सब झूठ हैं- नक्कली हैं ।

सम्बन्धों का स्नेह सब से ऊपर होता है-

आदर्श होता है- ।

मेरा मनुष्य बनती हुई मन:स्थिति को

बीच में रोक,



गाँवों की हरियाली देख सके।

अलबत्ता......एक बार मनुष्य बन जाने के बाद

फिर गाँव लौट जाना इतना आसान था ?

मैं द्वन्द्व में फंसा छटपटाता रहा-

मनुष्य बनता रहा।

+ + +

मनुष्य बनने के बाद

मनुष्य की तरह रहने की जिस प्रवृत्ति का जन्म हुआ-

उसी ने बना दिया लोभी नक्कलची जीव।

प्रत्येक अच्छे लगते वस्तुओं को -

अपने साथ 'एडजस्ट' करने की बेवकूफी

बार-बार करता रहा, वतहपनी करता रहा।

और बार-बार अपनी इसी वतहपनी का

एहसास होते हुये भी-

गाँव और शहर की इस दूरी के बीच

भटकता रहा।

और अपनी इसी वतहपनी को उपलब्धि मानता रहा

भटकता रहा...।

+ + +



मैं थक चुका हूँ।

इतनी विस्तृत जगह-

और मेरी सीमित मन:स्थिति के द्वन्द्व ;

मेरा थकान स्वाभाविक।

इसीलिए थके हारे राही की तरह

थक चुका हूँ - थोड़ा आराम चाहिए।

आते वक्त का तीखा वीष को

घोंट जाने का साहस जुटा सकने के लिये

थोड़ा आराम करना जरूरी है।

+ + +

ऐसे हीं एक आराम के क्षण में

कहीं बिजुली चमक उठती है

और एक चेहरा नजर आ जाता है।

मनुष्य के साथ रहने वाला एकदम फीट।

सत्ते ही था उसका नाम,

समाज से बहिष्कृत

मनुष्य बना पिता के गरदन में-

लपटाया हुआ घर में पड़ा सड़ता हुआ,

भावी जीवन से आतंकित।



मनुष्य की संगति की खातिर बेहाल।

मन चिँहुक जाता है....।

+ + +

घर में टेबुल पर छितराई हुई

पत्र-पत्रिका और किताबें

किसी आलमारी या दराज में

सहेज कर रख दी जायेगी

टूटा हुआ दरवाजा वाला आलमारी में रखे गये

बहुत से- उटपटांग वस्तु

सम्हाल कर रख दिये जायेंगे

यत्र-तत्र फेंका गया

मोड़े-माड़े गये नये वस्त्र

अच्छे ढंग से तह लगाकर पेटी या

अलगनी पर रख दिये जायेंगे

कोठरी में ठेहुन तक लगा हुआ

गरदा-बालू

निश्चिय रूप से सुबह और शाम को

नियमित बुहरायगा और

घर ऐनक की तरह झलकेगा।



मित्रों के झुण्ड को दूकान से चाय पीने का
झंझट अब नहीं रहेगा
घर में ही बनेगी पापड़ के साथ चाय।
बाल-बच्चों या खुद के लिये गर्म स्वेटर
महँगा दाम में दूकान से खरीदना नहीं पड़ेगा
अपने घर में ही बुनायेगा -जैसा चाहिए वैसा।
दो दूध देने वाली भैंस का दूध
अब कुत्ता नही पीयेगा
और न घर में छिटाया हुआ अन्न
कोई लोभी अपने खोंइछा में रख
ले जायेगी।
स्कूल के डर से भागा हुआ ननका को
परबोधि पढ़ने के लिए नियमित
भेजा जायेगा
मेरे अस्त-व्यस्त व्यक्तित्व को संयमित कर
काम का बनाने का भी
प्रयत्न होगा ही।
अपना भी खेत-खलिहान नहीं पहचानने की
मेरी प्रवृत्ति में



निश्चित होगा बहुत ही सुधार।

+ + +

मनुष्य बनकर जीने का सुखद संयोग
स्पष्ट नजर आ रहा है.... ।

+ + +

जान-पहचान का लम्बा सिलसिला का
होता है प्रारम्भ।
आत्मीय सम्पर्क की प्रगाढ़ता
याचित क्षण की उपलव्धि के निकट पहुंच जाती है-
"मैं तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ -।"
सिहर गयी थी मेरी आत्मा-
नाच उठा था मेरा सम्पूर्ण भविष्य और अतीत
मुझ में और मेरे गाँव में।
'गाँव' और 'शहर' का द्वन्द्व एक बार फिर प्रारम्भ हो गया।
अस्तित्व के संस्कारजन्य मौलिकता लिए हुए गाँव-
एक बार फिर जीत गया था भविष्य के सपने को, लादे शहर से
मैं एक बार फिर मनुष्य बनने का दर्द
हृदय में छुपाए छटपटाता रह गया।
स्नेह के ओझराया तार-तार को



मैं विवश वादक की तरह

कतार दृष्टि से निहारता रह गया।

यही देखने की प्रवुत्ति

मेरी उपलव्धि हो गई है-

और प्रत्येक उपलव्धियों के साथ भटकना मेरी नियति।

मैं पुन: भटक रहा हूँ .....।

+ + +

ऐसे हीं भटकती-भहराती अमरलत्ती

बैर का आसरा पाकर फिर से

चतरने की अथवा हरा होने की

प्रयत्न कर रहीं है।

थका हुआ गतर-गतर अंग को

कुछ ही समय के लिए आराम करने का

जब वक्त मिलता है-।

मन कुछ हल्का हो जाता है।

+ + +

जीवन संघर्ष के प्रत्येक आयाम में थका सा किसी अर्जुन को

पुन: कर्त्तव्य पथ पर बढ़ने के लिए

नि:सृत प्रेरणा स्रोत-



गीता का निर्माण करता है।

मेरी गीता

इसी तरह के प्रत्येक कटु-मधु क्षणों को

पीने की शक्ति प्रदान करती है,

मैं रणभूमि में लड़ने-मरने के लिए

अपने को तैयार करने लगता हूँ।

विस्थापित राज्य प्राप्ति की कामना

महाभारत के निर्माण में जुट जाने की प्रेरणा देती है।

अलबत्ता.........

यहाँ भी मैं भ्रमित हो जाता हूँ

अपने को अर्जुन समझ-

रणभूमि जीत लेने का विश्वास

मात्र धोखा हो जाता है।

द्रोणाचार्य के द्वारा बनाया गया चक्रव्यूह में

ओझराया अकेला अपने को पाकर

स्थिति बोध होता है।

और मेरे सामने अभिमन्यू की नियति स्पष्ट हो जाती है।

अधूरा गर्भ में ज्ञान की गीता,

बीच में भ्रष्ट हो जाती है।



और मैं प्रत्येक क्षण मृत्यु के करीब होने लगता हूँ।
इसी मृत्यु की गति को देखते रहना मेरी उपलब्धि हो गई है
और मैं प्रत्येक उपलब्धि के साथ भटकने लगता हूँ.... ।

+ + +

लेकिन अब सचमुच मैं थक चुका हूँ।
पुनः भटकने का जोखिम उठाना
अब मुझ से सम्भव नहीं।
कठोर सी संस्कारी व्यथा-कथा का बोझ
सर पर ढोते हुये दबा हुआ बैठा
रहना ही पड़ेगा।
समझाना ही पड़ेगा किसी तरह -
दहकते अपने हृदय की ज्वाला को
परिवेश के महकते गन्ध को
रुमाल की छिद्र से सहने का
साहस जुटाना ही पड़ेगा
मुझे खुद को निढाल, धार की गति के साथ
छोड़ देने का मन करता है।

+ + +

जीवन एक गति है



गति के साथ मनुष्य आगे बढ़ता है -
संकल्पित जगह तक पहुँचने के लिए।
राहों की बाधा। अवरोध-
दिन-रात के चक्र सदृश
सहज परिवर्तन के प्रतीक होते हैं -
गति की सक्रियता के लिए तीव्रता के लिए
मुदा इसी बीच-
भरापूरा परिवार के बीच
एकाकीपन की अनुभूति
अथवा -मनुष्य बन जीने के क्रम में
कंटिला इतिहास की पृष्ठभूमि
गति को अवरुद्ध कर देती है।
लोग तब इस अवरोध को हटाने के लिए
ढूंढते हैं- कोई स्नेहिल सहयोगी
जिसका सान्निध्य नव-जीवन दे सके
मन में व्याप्त मृत्यु के भय को निकाल सके।
तभी प्रादुर्भाव होता है किसी आत्मीय का-
जो स्वयं कालान्तर में आग्रही बन
राह को बोझिल बना देता है।



सभी अपनी गति में ही बेहाल-

जीवन लिप्सा के व्यमोह में फंसा हुक-हुक करता ।

कितने सारे उड़ती हुई राहों को

आवेश में समेट लेने का प्रत्येक उपक्रम

मुझे और अकेला बना दिया है।

और केवल एलबम के पुराने चित्रों की अन्तर्कथा की

पृष्ठभूमि में जीने के लिए हो गया हूँ बाध्य।

इसीलिए मैं मात्र इसी का अभ्यासी बनना चाहता हूँ।

हाँड़-मांस की आकृति धोखा देती है-

वादाखिलाफ करती है, किसी को भजा लेती है

टीस देती है - घुटन देती है- गलत इतिहास देती है।

अलबत्ता- ये चित्र स्थिर हो अपनी कथा कहते हैं,

सावधान किया करतें हैं- भ्रम में पड़ी गति को-

शिथिलता के दोष पर।

मुझे तेज-टेरामाइसीनी गति, अब नहीं चाहिए,

नहीं पचा सकता इस तरह का अब कोई खुराक।

इसलिए हे मेरे आत्मीय !

मेरे एलबम की पृष्ठभूमि में तुम्हारे चित्र भी विहँस रहे है-

सो उसी विहँसती आकृति में



गद्दारी का गन्ध खोजने का अवसर मुझे मत दो ।

मैं पहचान चुका हूँ सभी को ।

कितना भी तुम्हारे समर्पित अथवा याचित नजरों के

दर्द को अब मैं नहीं सहेज सकता,

बस, अब नहीं, छोड़ो सब जंजाल

इसी तरह जिन्दगी की राह में

एकान्त में रह जीने की मन की इच्छा

एलबम में टंगी विहंसती तुम्हारी आकृति से भी पूरा हो सकती है

उसे स्थिर रहने दो ।



०३५।०७।०१



– उपसंहार –

प्रथम पुरुष की स्वीकारोक्ति

सचमुच मुझे इतिहास नहीं चाहिए

यह सदैब मुझे डंक मारता रहा है-

अपने ही किए अनेकौं कारनामे-

खुद को अपराधी बना

जब कठघरे मे ं खड़ा कर देता है

तो अपने आप पर तरस आता है

और आज फिर

वर्त्तमान के इजलास में

अपराधी बना खड़ा

खुद की ही उजुरी पर

अपने आप पर सुनवाई करते हुए

अपनी सजा खुद तय करना चाहता हूँ।

तीन दशक पूर्व खायी थी कसम हमने

बस, अब नहीं,

भटकते अपने मन को

संयमित करने का मेरा वह संकल्प



पता नहीं क्यों एक बार फिर उद्दाम हो गया था-

विगत से खण्डित, थकित मुझे

जैसे किसी ताजी हवा ने झकझोर कर

रख दिया था,

टूट गया था मेरा सब संकल्प,

दृढ़ता व इतिहास की प्राप्ति का त्रास !

अनायास सृजित 'रचना' ने

फिर एक बार भ्रमित कर दी थी मुझे -

मैं कड़वाहट से भरा अतीत को

प्राय: भुलाने के लिये ही सही

रचना को थामा था-

एक नयी उर्जा व खोये हुये अतीत को पाने को !

पर 'अमरलत्ती' की नियति भोगता मैं

और कितने दिन परजीवी बन जी पाता,

अपने भीतर का पौरुष मार कर

संस्कारी अतीत व उलझा वर्त्तमान को

निरन्तर ढोते रहकर

मैं तब भी खुद के प्रति न्याय नहीं कर पाया,

मेरा खुद के संकल्प से पीछे हटना



महज मेरी कमजोरी थी

एक लौल कि मैं अपने जीवन की क्षतिपूर्ति

दूसरो के जीवन को लपटकर कर लूँ,

यही विकृत मनोभाव विगत में भी मुझे

भटकाता रहा है, वर्त्तमान भी स्थीर नहीं रह पाया,

सचमुच जो मुझे चाहिये-

कहां रख पाता हूँ सहेज कर,

शायद वही रुढि, नक्कली प्रतिष्ठा की चिन्ता

अपने मन के भीतर के वसन्त को

बार-बार पतझड़ में बदलता रहा है

और मैं चुपचाप, एक अपराधी सा

ऐसे ही कठघरे में खड़ा होकर

अपना अपराध कबूल करता रहा हूँ-

हां, मैं नहीं सम्भाल पाया प्रेम को !

शायद मैं स्वार्थी था, कमजोर था, डरपोक था

अथवा कामी, क्षुद्र कुछ भी था-

पर असल प्रेमी नहीं था !

सचमूच मैंने संकल्प तोड़ा

पर पुनः बिखरे को, समेटने के लिये नहीं



लपक कर भोगने के लिये,

खुद के घाव पर मलहम लगाने के लिये ;

'रचना' की निरन्तरता अन्तत:

मेरे कमजोर पौरुष व आत्मकेन्द्रित सोच के चलते

खण्ड-खण्ड होती गयी

और मैं अपने चारो ओर छिटके

उन्हीं अन्तरंग लम्हों की अनुभूतियां

बिन-बिन कर घाव पर मलहम

चोपड़ने का विवश भरा दिनचर्या निबाहता हूँ

और यही मेरा प्रायश्चित है ।

उम्र की इस दहलीज पर

चाह कर भी अपने को इतिहास के कंटिले वारों से

मुक्त नहीं कर सकता-

अब तो यही बेवसी

मेरी नियति है

यही सत्य मेरी जिन्दगी है ।



२०६७।०५।०६